International Journal of Applied Research 2019; 5(1): 499-502

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2019; 5(1): 499-502
www.allresearchjournal.com
Received: 14-10-2018
Accepted: 15-11-2018

डॉ० रोहित कुमार
स्वतंत्र शोध अध्येता राजेन्द्र रोड, बरौनी, बेगूसराय, बिहार बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ० रोहित कुमार
स्वतंत्र शोध अध्येता राजेन्द्र रोड, बरौनी, बेगूसराय, बिहार बिहार, भारत

कम्बोडिया की सामाजिक व्यवस्था पर भारतीय प्रभाव

डॉ० रोहित कुमार

सारांश
भारत की सभ्यता विश्व के अन्य देशों की सभ्यता से अधिक प्राचीन है। भारतीय संस्कृति वर्तमान भौगोलिक सीमा के बाहर विस्तृत थी और इस संस्कृति के प्रभाव का फैलाव मध्य एशिया और दक्षिण–पूर्व के देशों और प्रशांत महासागर के द्वीपों में हुआ, वह अपने समय की एक महत्वपूर्ण घटना थी। जिसका विस्तार उत्तर–पश्चिम मार्ग से होकर मध्य एशिया, चीन तथा जापान तक हुआ और दक्षिण–पूर्व एशिया में पूर्वी बन्दरगाहों के द्वारा हुआ।

प्रस्तावना
दक्षिण–पूर्वी सागरों पर भारतीय संस्कृति के विस्तार का इतिहास पाँचवीं शताब्दी ई0 पू0 से चौदहवीं शताब्दी ई0 तक का है। इस संस्कृति को ले जाने का श्रेय भारतीय व्यापारियों को है, जो वाणिज्य–व्यापार की श्रीवृद्धि के लिए उन देशों में गये, किन्तु वाणिज्य, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त अपनी स्थलीय सीमा के उस पार भारत का जो प्रभाव फैला था, उसमें राजनीतिक प्रभाव भी कम नहीं थे और ईसा की प्रथम शताब्दी से ही यह बात देखने को मिलती है कि अनाम, कोचीन–चीन और प्रशांत महासागरीय द्वीपों में हिन्दू राज्य अथवा हिन्दू प्रभाववर्ती राज्य स्थापित थे।[1]

एशिया के दक्षिण–पूर्वी भाग में चम्पा, मलय, अनाम, बोर्नियो, कम्बोडिया, जावा, बाली, वर्मा आदि देशों में अभिलेख पर्याप्त संख्या में मिले हैं। अभिलेखों के अध्ययन से उन देशों के राजनीतिक इतिहास का ही ज्ञान नहीं होता है बल्कि उनके समाज, साहित्य तथा अन्य विचार–धाराओं की जानकारी भी होती है। उन देशों के इतिहास, उपनिवेश का प्रारंभ, भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगों का प्रसार आदि बातों की जानकारी हमें लेखों से ही मिल जाती है।[2] उपनिवेश स्थापित हो जाने पर वहाँ भारतीय सामाजिक रीतिरिवाज का प्रसार हुआ, स्वभावतः उन द्वीपसमूहों में हिन्दू धर्म एवं साहित्य की ओर लोगों का ध्यान गया क्योंकि धर्म ही सामाजिक जीवन के कार्यों और व्यक्ति के उद्देश्यों का निर्धारण करता है और उसके जीवन के लिये एक मापदण्ड भी स्थिर करता है। वहाँ से सामाजिक, धार्मिक तथा कला का इतिहास इस बात को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है कि भारतीय संस्कृति का विस्तार किस रूप में हुआ था। वहाँ के खण्डहर तथा भग्नावशेष ऐसे अकाट्य प्रमाण है जिनके आधार पर भारतीय संस्कृति के स्वरूप तथा उसके विस्तार का परिज्ञान हो जाता है।

प्राचीन कम्बुज (कम्बोडिया) का सामाजिक जीवन भारत से अति प्रभावित था। वहाँ के संस्कृत अभिलेखों में देश की तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन मिलता है। भारतीयों के सम्पर्क में आकर ही कम्बुज वालों ने सभ्यता एवं संस्कृति के क्षेत्र में उन्नति की और भारत के ही धर्म, आचरण, संस्कृति आदि को अपना लिया।[3]

भारतीय वर्ण–व्यवस्था के अनुकूल कम्बुज अभिलेखों में भी चत्वार वर्ण का उल्लेख मिलता है।[4] वहाँ के राजा अपने देश के समाज–संगठन को भारत के चातुर्वर्ण्य पर आधारित समाज के अनुरूप बनाने के निमित्त सदैव प्रयत्नशील रहते थे। उन्होंने भारतीय चार आश्रमों से प्रभावित होकर अपने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था और उनके वैवाहिक सम्बन्ध राजवंश में भी स्थापित होते थे। इस संसर्ग से वहाँ 'बाह्म–क्षत्रिय' जाति उत्पन्न हुई जिसका कई अभिलेखों में उल्लेख है।[5] वैश्यों का उल्लेख किसी भी अभिलेख में नहीं है पर वे समाज के एक आवश्यक अंग थे। उनसे सम्बन्धित चम्पा में एक अभिलेख है। समाज में ब्राह्मणों को उच्च स्थान प्राप्त करने का श्रेय उन कौण्डिन्य ब्राह्मणों को है जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है तथा जिन्होंने कम्बुज देश में आकर अपनी सत्ता स्थापित की और अपने प्रयास में वहाँ की रानियों से विवाह किया।

प्रसत तकेओं अभिलेख में राजा सूर्यवर्मन के विषय में यह कहा गया है कि उसने अपने राज्य में वर्ण–भाग की स्थापना की थी और शिवाचार्य नामक विद्वान को श्रेष्ठत्व की स्थिति प्रदान की थी किन्तु अपने देश की विशिष्ट परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर वह समाज को एक नया रूप देने में भी संकोच नहीं करता था। राजा जयवर्मन पंचम ने दो नये वर्णों का निर्माण किया जिन्हें ख्मुक और कर्मान्तर कहा जाता था।[6] इन वर्गों के जो व्यक्ति विद्या, शील और आचार में श्रेष्ठ हों, उन्हें आचार्य, चतुराचार्य, प्रधान सदृश महत्वपूर्ण पदों पर भी नियुक्त किया जा सकता था। इन दो नये वर्गों के विशिष्ट कार्य क्या थे, यह स्पष्ट नहीं है। व्यवसाय निर्वाचन हेतु जन्म–जाति किसी प्रकार का बन्धन नहीं था। एक अभिलेख के अनुसार ब्राह्मणों द्वारा हाथी हॉकना, गणिका सम्बन्धी कार्य, कर्मार और पुरोहित का कार्य करना बताया गया है।

अरब इतिहासकारों के मतानुसार सप्रवर्ण की समानता भारतीय समाज के सात अंगों के विभाजन से की जा सकती है। इन नयी जातियों का विवाह तीन ऊँचे वर्णों से हो सकता था। यहाँ के सम्राटों ने भी इन नयी जातियाँ के निर्माण में अपनी स्वीकृति दी थी। अंगकोरवाट के चित्रों में भी विभिन्न जाति के व्यक्ति अपनी वेश–भूषा में दिखाये गये हैं। इन जातियों के अतिरिक्त अन्तर्जातीय विवाहों से उत्पन्न सन्तानों का भी अभिलेखों में उल्लेख है, जिन्हें दान दिया जाता था। यहाँ के अभिलेखों में कुछ ऐसे भी नाम प्राप्त हैं। जिनमें स्थानीय और भारतीय सम्मिश्रण है, जैसे लोज युधिष्ठिर, मृतोत्र जयेन्द्र पण्डित, मृतोज पृथ्वीचन्द्र पण्डित आदि इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये स्थानीय और भारतीय वैवाहिक सम्बन्धों से उत्पन्न थे।

यहाँ वर्ण का आधार कर्म न होकर जन्म था। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण ही होता था, चाहे वह कोई भी व्यवसाय या कार्य करता हो। राजा हर्षवर्मन तृतीय के पल्लव स्टेले अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि कम्बुज देश के ब्राह्मण कुलों में व्यक्ति कतिपय ऐसे कार्य भी करते थे जिनका ब्राह्मणों से कोई सम्बन्ध नहीं था।

कम्बुज समाज निम्नांकित तीन मुख्य वर्गों में विभक्त था– साधारण जनता, दास एवं पहाड़ी दास।[7] साधारण जनता सामयिक सैन्य सेवा में जिम्मेदारी के साथ संलग्न थी। ये नवीन सैन्यदल शस्त्रों से सुसज्जित बाजों के साथ प्रस्थान करते थे। इनका अपना एक अलग दल समाज में था । दास लोग साधारण जनता से निम्न वर्ग के थे। इस वर्ग में ऋण लेने वाला, लड़ाई के कैदी इत्यादि आते थे। राजकीय अनुदान द्वारा लड़ाई के कैदी एवं अन्य दास मन्दिरों और आश्रमों को प्राप्त थे। दास–दासियों में वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित हो जाते थे। एक अभिलेख में 9 दासी पत्नियों के 43 दास पति का वर्णन मिलता है। पहाड़ी दासों की एक अलग श्रेणी थी। समाज में कुछ ऐसे भी दास थे जो अपने स्वामी की आज्ञा के पालन करने में हिचकिचाते थे इसीलिए उन्हें पहाड़ों की तलहटी तथा जंगलों में रहने को बाध्य किया जाता था। ये दुष्ट काले और लम्बे बाल रखते थे तथा विषैली बर्छियों का व्यवहार करते थे। इन सबके अतिरिक्त राजकुल के स्वामिभक्त लोगों का एक वर्ग अलग था जिन्हें संजक कहा गया था और स्वामिभक्ति के लिए प्राणों को न्यौछावर करना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी।

शिक्षा समुदाय या व्यक्ति द्वारा परिचालित वह सामाजिक प्रकिया है जो समाज को उसके द्वारा स्वीकृत मूल्यों और मान्यताओं की ओर अग्रसर करती है। सांस्कृतिक विरासत की उपलब्धि एवं जीवन में ज्ञान का अर्जन शिक्षा द्वारा ही होता है। जीवन–सभ्यताओं की खोज, आध्यात्मिक तत्वों की छानबीन एवं मानसिक क्षुधा की तृप्ति के साधन कला–कौशल का परिज्ञान शिक्षा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। प्राचीन भारत में भी सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा के लिए शिक्षा की व्यवस्था किया गया था। विभिन्न प्राचीन सभ्य देशों से लगभग भिन्न शिक्षा पद्धति भारत में प्रचलित थी। कम्बुज देश के अभिलेखों में उक्त देश की शिक्षा प्रणाली तथा साहित्य का पूर्णतया ज्ञान प्राप्त होता है। यहाँ शैक्षणिक परम्परा का अनुकरण किया गया था जैसा कि अध्ययन विषय, शिक्षा प्रणाली, विभिन्न स्तर के शिक्षक, शैक्षिक केन्द्र आदि से प्रतीत होता है।

कम्बुज अभिलेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत से प्रकाण्ड विद्वानों के आगमन से इनको बड़ा प्रोत्साहन मिला था और इसीलिये भारत के साथ इनका शैक्षणिक सम्पर्क बना हुआ था। कम्बुज में भारतीय आगन्तुकों में अगस्त्य वेद और वेदांग में पारंगत थे। सर्वज्ञ मुनि नामक आर्यावर्त निवासी ब्राह्मण चारों वेदों का ज्ञाता था तथा वह शिवभक्त भी था। कम्बुज देश में आकर उसने तथा उसके वंशजों ने उच्च पदों को सुशोभित किया। हिरण्यदामन नामक तान्त्रिक शिवकैवल्य को ब्रह्मविनाशिक्ष, नवोत्तर, सम्मोह तथा शिवच्छेद नामक चार ग्रन्थों में शिक्षा प्रदान करने हेतु भारत से कम्बुज जयवर्मन द्वितीय के निमंत्रण पर आया था। कम्बुज देश से जो विद्वान शिक्षा प्राप्त करने के लिए भारत आये, उनमें इन्द्रवर्मन के गुरू शिवसोम ने भगवान शंकर के चरणों में शास्त्रों का अध्ययन किया था।

सोदे के मतानुसार गौड़ शैली में लिखे कुछ अभिलेख यह संकेत देते हैं कि इनके लेखक या तो पूर्वी भारत के निवासी थे अथवा कुछ दिन वहाँ रह चुके थे। भारत के साथ शैक्षणिक सम्पर्क इनकी शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने में सहायक सिद्ध हुआ।[8]

कम्बुज देश के साहित्य जगत में प्राचीन भारतीय साहित्य के तीनों अंगों– संस्कृत, पालि और प्राकृत को अपनाया गया है किन्तु इनमें संस्कृत को ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। ऐसा कहा जाता है कि संस्कृत वहाँ की राजभाषा थी। एक अन्य अभिलेख में गुणाध्य का भी उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि प्राकृत भाषा के भी अध्ययन का यहाँ प्रचार था किन्तु प्राकृत भाषा में कोई भी अभिलेख यहाँ उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कम्बुज में आये हुए ब्राह्मण आगन्तुक अपनी भाषा की विशिष्टता को पवित्र रखना चाहते थे। यहाँ लेखन में ब्राह्मी लिपि का ही प्रयोग हुआ है किन्तु कहीं–कहीं पर दक्षिण पल्लव लिपि में भी लेख मिलते हैं। इसी आधार पर यहाँ के भारतीय औपनिवेशिकों का उद्‌गम स्थान उत्तरी अथवा दक्षिणी भारत माना गया है

प्राचीन भारत की शिक्षा–प्रणाली की भाँति ही कम्बुज में भी धार्मिक आश्रम और देवालय ही शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। साधारणतः देवालय ही शिक्षा के केन्द्र थे, जहाँ अध्यापक और शिष्य निवास करते थे। इन्हीं देवालयों के साथ विप्रशाला और व्याख्याता भवन संलग्न थे। विभिन्न धार्मिक आश्रम, मठ और विहारों में भी शिक्षा प्रदान की जाती थी।

कम्बुज देश की शिक्षा की प्रगति में बौद्ध विहारों का स्थान भी प्रमुख था। तेप प्रनम के अभिलेख में यशोवर्मन द्वारा बौद्ध आश्रमों के प्रति दिये गये दानों का उल्लेख है। कम्बुज देश में अनेक बौद्ध शिक्षा केन्द्र थे, जो सौगताश्रम के नाम से प्रसिद्ध थे। इन आश्रमों में बौद्ध भिक्षुओं का केवल आवास स्थल ही नहीं था बल्कि वहाँ उच्च कोटि के विद्वान भी रहा करते थे तथा बौद्ध शिक्षा का यहाँ आदान–प्रदान होता था। यहाँ बौद्ध धर्म और व्याकरण का भी अध्ययन किया जाता था।[9] जयवर्मन पंचम का मंत्री कीर्तिवर्मन नामक विद्वान विदेशों से बहुत ग्रन्थ लाया था और उन्होंने यहाँ माध्यमिक शास्त्र की ज्योति जलाई थी। सूर्यवर्मन बौद्ध मतानुयायी था तथा इसने इसमें वृद्धि भी की थी और शिक्षा के प्रसार में काफी अनुदान भी दिया था जिससे कई अध्ययन केन्द्र भी खोले गये थे। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, विचार तथा शिक्षा का कम्बुज देश में इतनी तेजी से प्रसार नहीं होता, यदि राजकीय प्रोत्साहन का अभाव होता। आश्रमों में अध्यापक और अन्तेवासियों के सहायतार्थ राजकीय अनुदान दिया जाता था। इसके अतिरिक्त उच्च श्रेणी के पुरूषों, व्यापारियों और कृषकों की ओर से भी अन्न तथा वस्त्र प्राप्त होता था।

कम्बुज देश में प्राचीन भारतीय साहित्य का भी उल्लेख है। प्राचीन काल की धार्मिक अवस्था, चिन्तन तथा नैतिक विकास के ये जीते–जागते उदाहरण हैं। वेद, वेदांग, सूत्र, न्याय, व्याकरण, षड्दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति, काव्य, छन्द, संस्कृत साहित्य के दिग्गज कालिदास, भारवि और अन्य साहित्यकारों की रचनाएँ, मनुस्मृति, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा वात्स्यायन के कामसूत्र इत्यादि का भी कम्बुज में अध्ययन होता था। अभिलेखों से ऐसा ज्ञात होता है कि प्रशस्तिकार शुद्ध संस्कृत लिख सकते थे और साहित्य क्षेत्र में उनका अच्छा ज्ञान था। कम्बुज के प्रकाण्ड विद्वान भी भारतीय साहित्य में अपना योगदान दे रहे थे। यह सत्य है कि यहाँ भारतीय शैक्षिक परम्परा का अनुकरण किया गया। यहाँ लेखों में विद्या को धन, वंश, आय तथा दान से श्रेष्ठ माना गया है।

सांस्कृतिक जीवन का सम्बन्ध उत्सव एवं मनोरंजन से होता है। जीवनोत्थान के लिये इन दोनों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार कम्बुज देश में भी नृत्य, गायन और नाटक मनोरंजन के मुख्य साधन थे। नर्तकियाँ गायन और वादन में पारंगत थीं और वे वीणा, दुन्दुभि और ताल का प्रयोग करते थे। इसके अतिरिक्त पुरूष भी नृत्य कला में प्रवीण थे। भारत की ही तरह नर्तकियाँ देवालयों को अर्पित की जाती थी। एक अभिलेख में सात नर्तकियों, ग्यारह गायकों और चार वीणा, कंजरी और साहू पर वाद्य–वादन करने वालों के मंदिर के प्रति अर्पण करने के उल्लेख है।[11] प्रायः दक्षिण भारत में नर्तकियों देवालयों में नृत्य एवं सेवा हेतु अर्पित की जाती थी। वे देवदासी कहलाती थी। एक अभिलेख के अनुसार कम्बुज के पुरूष भी प्रायः गायन तथा वाद्य–वादन में निपुण होते थे। यहाँ के कई परिवार गायन और वादन के लिये प्रसिद्ध थे। यहाँ नाटक खेले जाते थे । पुरूष नौका विहार भी करते थे। इसके अतिरिक्त मनोरंजन के अन्य साधनों में मुष्टि युद्ध तथा उत्सवों का भी उल्लेख मिलता है। वसन्तोत्सव धूमधाम से मनाया जाता था जिसका उल्लेख भी अभिलेखों में है। मुर्गों का युद्ध और वनैले सूकरों का युद्ध भी मनोरंजन के साधन थे।[12]

कम्बुज देश के समाज में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का स्थान सर्वोच्च था और इन वर्षों में परस्पर विवाह सम्बन्ध हो सकता था। यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय कन्या से विवाह कर सकता था किन्तु ब्राह्मण कन्या का विवाह अपने वर्ण से बाहर प्रायः केवल राजकुल के ही पुरूषों से होता था, साधारण क्षत्रिय कुल के पुरूष से नहीं।

यहाँ अन्तर्जातीय विवाह के अतिरिक्त दहेज की भी प्रथा प्रचलित थी क्योंकि नागराज की कन्या सोमा का विवाह कौण्डिन्य के साथ हुआ था तो उसे नागराज की ओर से अपने साम्राज्य का एक भाग उसे दहेज में दिया गया था। वैवाहिक सम्बन्ध प्रायः पिता अथवा अभिभावक द्वारा निश्चित किये जाते थे। एक अभिलेख में मृतोत्र श्री सर्वाधिकार की पौत्री मेसोंक द्वारा स्वयं विवाह प्रस्ताव लेकर जाने का उल्लेख है और दहेज में जीन सहित एक घोड़ा तथा कुछ अन्य पदार्थों के दिये जाने का उल्लेख है। इस देश में विवाह संस्था का क्या स्वरूप था इस विषय में कतिपय संकेत अभिलेखों में पाये जाते हैं जो काफी महत्वपूर्ण हैं। सम्भवतः छोटी जातियों या दास वर्ग के लोगों के बहुपति–विवाह की प्रथा भी विद्यमान थी।

समाज में स्त्रियों का उच्च स्थान था। भारतीय गृहणियों के समान उनका मुख्य काम भी घर, की व्यवस्था करना था। वहाँ की मण्डियों में स्त्रियाँ प्रायः दुकानें चलाती थी। राजमहलों की व्यवस्था में भी स्त्रियों का प्रमुख हाथ रहता था। जिनमें कुछ स्त्रियाँ रक्षाकार्य करती थीं और अन्य स्त्रियाँ राजमहलों में दासी तथा मनोरंजन के लिए नियुक्त की जाती थी। ये राजकीय पदाधिकारी भी होती थीं। तिलका नामक विदुषी को विद्वता के उपलक्ष्य में आभूषण उपहार दिया गया था तथा उसे वाग्देवी उपाधि से भी विभूषित किया गया था। अभिलेखों तथा साहित्यों में स्त्रियों की अभिरूचि का भी उल्लेख है। यहाँ नारी शिक्षा का प्रचलन था राजा के मंत्री और न्यायाधीश के पदों पर स्त्रियाँ भी नियुक्त होती थी। अंगकोर अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि प्रकाण्ड विद्वान ब्राह्मण सोमशर्मा की पत्नी जो राजा भववर्मन की बहन थी, अरून्धती की भाँति पतिव्रता एवं धर्मपराण थीं।

जयवर्मन के समकालीन अभिलेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन कम्बुज में सती–प्रथा भी प्रचलित थी। बयोन के बासरिलिफ द्वारा स्त्रियों के दैनिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

सूई वंश (चीन) के इतिहास से यह पता चलता है कि सम्राट स्वर्ण जड़ित रेशमी वस्त्र धारण करते थे।[13] यहाँ के चित्रों में भारतीय वस्त्र धोती मुख्य रूप से दिखाई गयी है। पुरोहित की पोशाक विशेष प्रकार की होती थी। यज्ञों के अवसर पर पुरोहित विशेष प्रकार के टोपी और कुर्ता धारण करते थे। सम्भवतः यह धार्मिक तथा न्यायालय का वस्त्र था।

चीनी वृतान्तों से हमें यह भी जानकारी मिलती है कि नारियाँ अपने हाथ–पैर को रंगती थीं और बालों को कंघी से संवारती तथा जूड़ा बाँधती थीं। नर्तकियां प्रायः हार, अंगूठी, इत्र, लाल रंग और चीनी आभूषण धारण किये हुये चित्र में दिखाये गये हैं। चीनी विवरणों में कम्बुज देश के निवासियों के परिधान के विषय में जो लिखा गया है उसकी पुष्टि अंगकोर वाट में अंकित चित्रों द्वारा ही होती है। अंगकोर वाट की रूपावलियों में पुरूषों तथा स्त्रियों के जो बहुत से चित्र है उनमें उन्हें धोती पहने हुए दिखाया गया है। दुपट्टा या उत्तरीय कन्धों पर ओढ़ा जाता था और सिर पर ऊँची तमौलि रहती थी।

एक अन्य चीनी ग्रन्थों में कम्बुज के विषय में लिखा गया है कि वहाँ के आदमी कद में छोटे तथा काले रंग के होते थे। कोई–कोई स्त्रियाँ साफ रंग की भी होती थी। लोग अपने बालों का जूड़ा बाँधते और कानों में कुण्डल पहनते थे। वे कर्मठ होते थे। वे प्रतिदिन प्रातः स्नान करते थे, वृक्ष की लकड़ी से दाँत साफ करते थे और उसके बाद भोजन करते थे।

कम्बुज के अभिलेखों में वहाँ के लोगों के भोजन के सम्बन्ध में कतिपय संकेत मिलते हैं। अभिलखों के अनुसार तंडुल (चावल) ही कम्बुज के निवासियों का मुख्य भोजन था, जो पकाया जाता था।[14] व्यंजनों के निर्माण में नमक, जीरा तथा इलायची डाली जाती थी तथा अदरख, तेल और मधु का भी प्रयोग होता था।[15] ताप्रौम के अभिलेख में भोज्य पदार्थों में खार्य, भात्त, मुदग्, घृत, खीर, मधु, गुड़ और तेल का उल्लेख मिलता है।[16] मक्खन के प्रयोग का भी उल्लेख एक अन्य अभिलेख में है।[17]

प्राचीन भारतीयों की भाँति ही कम्बुज निवासी भी विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का उपयोग करते थे। वे भुने हुए मांस को रोटी के साथ खाते थे। सुरा पीने का भी कहीं–कहीं उल्लेख मिलता है। सुरा, ईख, मधु, तंडुल और जंगली पत्तियों से तैयार की जाती थी। नमक समुद्र के पानी से तैयार किया जाता था। भोजन में घट, कढ़ाई, कलश, शराब–तश्तरी और बड़े–बड़े घटों का उल्लेख है तथा स्वर्ण और रजत के पात्रों का भी प्रयोग किया जाता था।

अन्त्येष्टि क्रिया के सम्बन्ध में लिअंग वंश के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि मृतक का चार प्रकार से अंतिम संस्कार किया जाता था। शव को आग द्वारा जलाकर, शव को नदी में फेंककर, शव को भूमि में गाड़कर और शव को निर्जन क्षेत्र में पशु–पक्षियों को खाने के लिए छोड़ देना।

दाहकर्म करते समय लोग मूंछ और बाल को कटवा लिया करते थे। सूई वंश के इतिहास में इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण वृतान्त उपलब्ध है। इस ग्रन्थ के अनुसार मृतक के परिवार वाले एक सप्ताह तक न तो कुछ खाते थे और न बाल बनवाते थे। इस पर भी भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखता है। मृतक शरीर के साथ पुरोहित प्रार्थना करते थे और गाते हुए श्मशान तक जाते थे और सब प्रकार के वृक्षों की लकड़ियों पर शव को रखकर दाह–संस्कार करते थे।[18] स्वर्ण या रजत के कलश में

भस्म को रखकर वह पात्र किसी नदी में फेंक दिया जाता था। कभी–कभी शव को जंगली पशुओं के लिये छोड़ दिया जाता था। निर्धन लोग इस काम के लिये मिट्टी की डिबिया प्रयुक्त करते थे जो नाना प्रकार से चित्रित एवं अलंकृत की हुई होती थी।

कम्बुज अभिलेखों से ज्ञात होता है कि देश में दास–प्रथा भी प्रचलित थी। इन दासों में कुछ दत्तक थे, कुछ पैतृक थे और कुछ जीते हुए देशों से बन्दी के रूप में बनाये गये थे। यहाँ से प्राप्त अभिलेखों में दासों को दान में दिये जाने का वर्णन है।

चम्पा अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि वर्मा और थाई देश के दासों को चम्पा के देवालयों में अर्पित किया गया था। सूर्यवर्मन द्वितीय ने अंगकोर वाट मंदिर के निर्माण हेतु दासों को लगाया था। जब हेमश्रृङ्गगिरि और जयेन्द्रगिरि का किला बनाया गया तब उसमें भूमि और दास दान किये गये थे। अन्य अभिलेखों के आधार पर दास–भूमि और अन्य सम्पत्ति दान–स्वरूप सूर्यपर्वत के देवालय को अर्पित किया गया था।

देश में दासों के निमित्त बहुत कठोर नियम थे। पुरूष और स्त्री दोनों प्रकार के दास होते थे तथा दोनों में विवाह हो सकता था। एक दास कन्या अनेक दास पुरूष से विवाह कर सकती थी। ईशानवर्मन के वाट सबब अभिलेख में 42 दासों एवं उनकी 9 पत्नियों का उल्लेख है।[19]

इस समय दासों की स्थिति अच्छी नहीं थी। वे स्वार्थ के निमित्त व्यवहार किये जाते थे और जानवरों के समान जीवन–यापन करते थे। समाज के निम्न श्रेणी में उनकी गणना की जाती थी। सामाजिक व्यवस्था में राजा सबसे ऊँचा और दास सबसे नीचे था। संग्राम की विजय उसके प्राणों की आहुति से होती थी। गृह–निर्माण एवं कीर्तिस्तम्भ समाधियों का निर्माण इन दासों के श्रम से होता था तथा राजकीय महल एवं धनी मनुष्यों के गृह के विलासी जीवन में उनकी सेवा सहायक थी। इन निर्धनों की स्थिति अनेक पीढ़ियों तक ज्यों की त्यों बनी रहती थी। इनकी स्थितियों में किसी प्रकार का सुधार सम्भव नहीं था। कभी–कभी कदाचित विद्रोह हो जाता था जिसे जन–विप्लव के नाम से जाना जाता था। अन्ततोगत्वा जब शत्रु ने देश पर आक्रमण किया तो इस प्रकार की आबादी ने उनका स्वागत किया और अंत में इनका परिणाम यह हुआ कि शासन का अंत हो गया।

इस प्रकार निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कम्बोडिया की सामाजिक व्यवस्था पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है चाहे वहाँ की वर्ण और जाति व्यवस्था हो, शिक्षा, भाषा, सांस्कृतिक जीवन, नारियों की स्थिति, वस्त्र, आभूषण, भोजन व पेय पदार्थ, मृतकों का संस्कार हो इन सबों पर भारतीय प्रभाव की झलक मिलती है।

संदर्भ–सूची

1. आर0 सी0 मजूमदार, कम्बुज देश, मद्रास, 1944, पृ0– 26.
2. डी0 जी0 ई0 हॉल, ए हिस्ट्री ऑव साउथ ईस्ट एशिया, लंदन, 1967, पृ0– 23
3. महेश कुमार शरण, कम्बुज देश का राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास, वाराणसी, 1995, पृ0–109
   सेफोंग अभिलेख, पद– 19
4. महेश कुमार शरण, स्टडीज इन संस्कृत इन्सक्रिप्सन ऑव ऐनसियन्ट कम्बोडिया, न्यू दिल्ली, 1974, पृ0 – 175
5. महेश कुमार शरण, वही, संख्या – 111, पृ0 – 110
6. मजूमदार, रमेशचन्द्र, वही, सं0 – 111, पृ0 – 290, पद – 26
7. महेश कुमार शरण, वही, पृ0 – 113
8. चार्ल्स इलियट, हिन्दूइज्म एण्ड बुद्धिज्म, भाग–3, लंदन, 1921, पृ0–106
9. महेश कुमार शरण, वही, पृ0 – 119
10. आर0 एन0 पाण्डेय, दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति, इलाहाबाद, विक्रमाब्द 2044, पृ – 41
11. वही, पृ0 – 44
12. एल0 पी0 ब्रिग्स, ऐनसियन्ट ख्मो इम्पायर, फिलाडेलफिया, 1951, पृ0 – 47
13. मजूमदार, रमेशचन्द्र, वही, सं0 – 177, पृ0 – 467
14. वही, सं0 – 171, पृ0 – 587
15. वही, पृ0 – 284
16. मैकडोनल्ड, एम0 अंगकोर, लंदन, पृ0 – 66
17. महेश कुमार शरण, वही, पृ0 – 124
18. वही, पृ0 – 127